International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 05-04-2023, Accepted: 20-04-2023, Published: 06-05-2023
Volume 9, Issue 3, 2023, Page No. 09-10

हिन्दी के असंगत नाटक व रंगमंच एक विश्लेषण

सोनम पाण्डेय
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल कई नवीन विधाओं का जन्मदाता है। कहानी, उपन्यास नाटक व निबंध आदि अनेक विधाएँ इस युग की विशिष्ट देन है। इसी युग में असंगत नाटक भी लिखे गए हैं। असंगत नाटकों में मनुष्य के जीवन की नीरसता, निरर्थकता व अनास्था को दिखाया गया है। असंगत नाट्य लेखन की शुरुआत पाश्चात्य साहित्य से हुई है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात मनुष्य का जीवन अधिक संत्रस्त हो चुका था। उसके सामने अस्तित्व का संकट उभरकर आया। मनुष्य के जीवन की इन विद्रूपताओं का चित्रण असंगत नाटकों में हुआ है। असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को बखूबी व्यक्त करते हैं। इन नाटकों में परंपरागत मूल्यों के प्रति अनास्था है। असंगत नाटकों का रंगमंच प्रतीकात्मक होता है। यहाँ पात्रों की वेशभूषा, हाव–भाव व मंच सज्जा विशिष्ट अर्थ रखते हैं। यह परिवेश की असंगतता को दिखाने में सहायक होते हैं।

मूल शब्दः असंगत नाटक, रंगमंच, यथार्थ, वेशभूषा, मंचीयता

असंगत नाटकों की अवधारणा

नाटक समाज का दर्पण है। समाज में जो कुछ घटित होता है, उसी का चित्रण नाटक में किया जाता है। साहित्य की अन्य विधाओं के समान नाटक में वर्णित जीवन की परिकल्पना की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उसमें दर्शक या श्रोता पात्रों के जीवन को अपने सामने देखते हैं। नाटक व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश व स्वयं से जोड़ता है। व्यक्ति से साक्षात्कार की निकटतम विधा होने के कारण व्यक्ति, दर्शक या श्रोता को उसके रसास्वादन में कोई कठिनाई नहीं होती है।

स्वतंत्र भारत में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक धरातल पर जनमानस में उथल–पुथलपूर्ण वातावरण था। इसका प्रभाव नाटकों पर भी देखने को मिलता है। इस समय के नाटक में विषय की विविधता के साथ शिल्प की दृष्टि से भी नये प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे– प्रतीकात्मक नाटक, अनेकांकी नाटक, एकांकी नाटक, रेडियो नाटक, एकपात्रिय नाटक आदि। इसी परिवर्तनशीलता की एक धारा "हिन्दी असंगत नाट्य धारा" के रूप में हिन्दी नाटक साहित्य में आई है, जो पाश्चात्य प्रभाव के कारण विकसित हुई है।

नवविकसित असंगत नाटकों में मनुष्य के जीवन की नीरसता, निराशा, निरर्थकता, क्रूरता, अनास्था को दिखाया गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात मनुष्य का जीवन अधिक संत्रस्त हो चुका था। उसके सामने अस्तित्व का संकट उभरकर आया। मनुष्य के जीवन की इन विद्रूपताओं का चित्रण असंगत नाटकों में हुआ है। असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को बखूबी व्यक्त करते हैं। इन नाटकों में परंपरागत मूल्यों के प्रति अनास्था है। असंगत नाटक, नाटक का एक ऐसा प्रकार है जो अतार्किक, अर्थहीन और सोच समझकर भ्रामक कार्यों और संवादों के प्रयोग द्वारा मानव जीवन में निहित असंगतता को चित्रित करते हैं। यह नाटक प्रतीकों के माध्यम से जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को दिखाता है।

असंगत नाटकों का कथानक बड़ा सूक्ष्म होता है उसमें कार्य व्यापार अधिक रहता है और उसके कथ्य में कोई क्रमबद्धता नहीं रहती। उसी के साथ–साथ पात्रों का चरित्र चित्रण विघटित और सामान्य होता है। नाटकों के संवादों में भी कोई संगति प्रतीत नहीं होती। "विसंगत" और "असंगत' ये शब्द असंगत नाटकों की प्रवृत्तिगत विशेषता के सूचक हैं। हिन्दी में भी ये नाटक "असंगत नाटक" या "विसंगत नाटक" नाम से ही प्रचलित हैं।

हिन्दी के असंगत नाटकों का रंगमंच

नाटक मंचीयता का महत्वपूर्ण अंग है। मंच पर प्रस्तुति नाट्य रचना का अन्तिम लक्ष्य होता है प्रत्येक नाटक अपना रंगमंच अपने साथ लेकर पैदा होता है। रंगमंच नाटक से बाहर की कोई वस्तु नहीं है, नाटक की प्रस्तुति के साथ ही वह प्रकट होता है और नाटक के समाप्त होते ही विलीन हो जाता है। असंगत नाटकों का भी अपना रंगमंच होता है परंतु यह अपने कथ्य की तरह ही विसंगति युक्त होता है। मनुष्य जीवन की महत्वपूर्ण विसंगतियों की अभिव्यंजना के लिए असंगत नाटककार प्रतीकात्मक रंगमंच को अधिक महत्व देते हैं। इसके नाटककार पारम्परिक रंगमंच पर विश्वास नहीं करते हैं। इनकी मंचसज्जा बिल्कुल साधारण तथा असम्बद्ध होती है। इनके पात्र अतिसाधारण तथा अजीबोगरीब वेशभूषा वाले होते हैं। अतः इनका रंगमंच ऊल–जलूल, अल्पव्यय तथा प्रतीकात्मक होता है।

नाटक रंगमंच को जन्म देता है और रंगमंच नाटक में प्राण भरता है। रंगमंच पर नाटक को प्रस्तुत करना ही नाटककार की सबसे बड़ी देन है। असंगत नाटकों की प्रस्तुति करने का उद्देश्य परंपरा से प्रचलित जीवन मूल्यों की नीरसता और खोखलेपन को मूर्त रूप देना ही है। इसलिए असंगत नाटकों के रंगमंच तक आते–आते रंगमंचीय उपकरणों में बदलाव आया है। परंपरागत उपकरणों की तुलना में असंगत रंगमंच अल्पव्यय वाले, साधारण बन गए हैं ताकि दर्शक उनमें उलझकर न रह जाए।

डॉ रामसेवक सिंह के अनुसार– "एब्सर्ड मंच उस विश्वव्यापी स्वयंःपूर्त आन्दोलन का एक अंग है जिसमें जीवन की अपरिहार्य विडम्बनाओं तथा उसकी निरर्थकता से क्षुब्ध मनुष्य की असहाय स्थिति का चित्रण ही प्रधान उद्देश्य है।"

असंगत नाटककार पारम्परिक रंगमंच में विश्वास नहीं करते। इनका रंगमंच बिल्कुल साधरण और असम्बद्ध है। असंगत नाटकों का रंगमंच इतना ऊल–जलूल होता है कि दर्शक और पात्रों के बीच में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। मनुष्य जीवन की महत्त्वपूर्ण विसंगतियों की अभिव्यंजना के लिए असंगत नाटककार प्रतिकात्मक रंगमंच को अधिक महत्व देते हैं। जैसे भुवनेश्वर की एकांकी 'तांबे के कीड़े, यह एकांकी परम्परागत नाट्य विधान से अलग है। इसमें न कोई कथा है, न मंच– विधान। मंचसज्जा के नाम पर सिर्फ एक काला स्क्रीन है, जिससे नेपथ्य का काम लिया गया है। मंच उपकरण के नाम पर अनाउंसर के हाथ में झुनझुना और बैठने के लिए स्टूल है। मंच ऊल–जलूल और अल्पव्यय

वाला है। आंगिक शारीरिक अभिनय को इन रंगमंच में महत्वपूर्ण स्थान है।

भुवनेश्वर के बाद विपिन कुमार अग्रवाल का महत्वपूर्ण स्थान है। भुवनेश्वर के बाद असंगत नाटकों की परम्परा को पुनः स्थापित करने का श्रेय इन्हीं को जाता है। इनका नाटक "तीन अपाहिज" देश की अपाहिजता और जड़ता का प्रतीक है। कल्लू, खल्लू और गल्लू तीनों अपाहिज पात्र है ये काम नहीं करना चाहते हैं। इनके संवाद निरर्थकता से पूर्ण है। पात्र सही ढंग से संवाद भी नहीं बोलते हैं। जैसे– 'हाथ कंगन को आरसी क्या की जगह 'पारसी' तो 'परचूनी' की दूकान का जैसे गलत उच्चारण 'पन्चर' की जगह करता है।"

एकांकी जहाँ से प्रारंभ होती है, वहीं समाप्त हो जाती है. आगे कुछ नहीं बढ़ता है। बस समय घटता जाता है। मंच के बीचों बीच लगा खम्बा, जिससे तीनों पात्र टिककर बैठे हैं, देश की जड़ स्थिति को अभिव्यक्त करते हैं। दूर से आती भाषण की आवाज़ देश में नेताओं की भाषणबाजी को दिखाता है कि आज भी स्थिति वही है। खासकर संवाद में एक पात्र कहता भी है कि नेताओं के भाषण सुनने के लिए कार्यक्रम स्थल जाने की जरूरत नहीं है। आवाज तो यहाँ भी आ रही है। इतने सरल संवाद के जरिये व्यवस्था पर चोट भी की गई है। पंक्चर साइकिल आज़ादी के बाद देखे गये ख्वाबों को पस्त होते हुए दिखाता है। सभी पात्रों की वेशभूषा बहुत साधारण है।

असंगत नाटकों में संवाद कम और हरकतें ज्यादा होने से पात्रों के क्रिया व्यापार खुलेपन से व्यक्त किए गए हैं। ऊल–जलूल, ऊट–पटांग हरकतों द्वारा सामान्य जन–जीवन की असंगति को प्रस्तुत किया गया है।

असंगत रंगमंच का मुख्य उद्देश्य दर्शकों को सतर्क, सजग रखने का होता है। इसी कारण विसंगत नाटककार अभिनेता और रंगमंच को बनावट के बंधनों से मुक्त हैं। वे मुक्त करने और अभिनेता की कल्पनाशक्ति की स्वतंत्रता को बाँध लेने में विश्वास करते हैं। इन नाटकों के पात्रों की वेशभूषा साधारण होती है। कभी–कभार मुखौटों का प्रयोग भी किया जाता है। हमीदुल्ला के दरिंदे" नाटक के पात्र शेर, भालू और लोमड़ी के मुखौटों के माध्यम से ही मंच पर उपस्थित किया गया है। डॉ. केदारनाथ सिंह जी के अनुसार निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान जीवन और जगत के वास्तविक संदर्भो, विसंगतियों एवं समासों का तीक्ष्ण सशक्त रंगमंचीय सम्प्रेषण ही आधुनिक प्रतीकात्मक नाट्य–शिल्प है।

निष्कर्ष

हिन्दी में असंगत नाटक संख्या में अधिक नहीं है। फिर भी इस दिशा में जितना कार्य हुआ है, अपनी परिसीमा में महत्वपूर्ण है। भुवनेश्वर का तांबे के कीड़े, ऊसर, विपिन कुमार अग्रवाल का लोटन तीन अपाहिज लक्ष्मीकांत वर्मा का अकेला शहर, डॉ शंभूनाथ सिंह के दीवार की वापसी' और 'अकेला शहर काशीनाथ सिंह का घोआस, मुद्राराक्षस के 'भरजीवा', 'यौरफिथफुली', 'तिलचट्टा' और 'तेंदुआ, मणि मधुकर का 'रसगंधर्भ', सत्यव्रत सिन्हा का 'अमृत पुत्र', डॉ लक्ष्मीनारायण लाल का 'सुर्यमुख', लक्ष्मीकान्त वर्मा का 'रोशनी एक नदी' कथ्य व रंगमंच की दृष्टि से महत्वपूर्ण असंगत नाटक हैं।

संदर्भ सूची

1. तनेजा, जयदेव, नई रंगचेतना और हिन्दी नाटककार
2. त्रिपाठी, डॉ सत्यवती, आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता
3. तनेजा, जयदेव, हिन्दी रंगमंच दशा और दिशा
4. राय, डॉ नारायण, आधुनिक नाट्यशिल्प और समकालीन रंगमंच
5. मोहन, डॉ नरेंद्र, समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच
6. शुक्ल, धीरेंद्र, हिन्दी नाटक और रंगमंच
7. रस्तोगी, गिरीश, बीसवीं साड़ी में नाटक एवं रंगमंच
8. कुमार, रीता, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक